हिन्दी भाषा का साहित्यिक सफर!

अभिषेक दुबे

संदर्भ के अंक-136 में टी. विजयेंद्र का लेख *हिन्दी हाज़िर है* पढ़ा। इसका अनुवाद अमेय कान्त ने किया है। यह लेख आसान भाषा में आधुनिक हिन्दी से जुड़े कई मुद्दों को लेकर हमारे सामने आता है। यह हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और लिपि के सवाल पर; बीसवीं सदी में साहित्य में इसी हिन्दी के प्रवेश और विकास की रूपरेखा पर रोशनी डालते हुए उर्दू व हिन्दी के सम्बन्ध और पीछे जाकर दखनी से इसके जुड़ाव का खाका भी पेश करता है। यह ज़रूर ही पाठकों के लिए हिन्दी भाषा और साहित्य से परिचित होने का माध्यम बनेगा।

इसे पढ़कर मन में कुछ कुलबुलाहट पैदा हुई। निश्चित ही, लगभग 150 सालों का इतिहास किसी एक लेख में बता पाना मुश्किल होता है। यह कहते हुए, कुछ बातें जो मुझे लगती हैं कि लेख में शामिल न हो पाईं या बहुत ही थोड़े में कह दी गईं, की तरफ लेखक और पाठकों का ध्यान दिलाना चाहता हूँ।

फोर्ट विलियम कॉलेज का ज़िक्र

हिन्दी-उर्दू की बात करते हुए फोर्ट विलियम कॉलेज का ज़िक्र ज़रूरी हो जाता है। इसकी स्थापना गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलज़ली (1760-1842) ने सन् 1800 में की। आलोक राय ने एक किताब *हिन्दी नेशनलिज़्म* लिखी है और उसमें भाषा से जुड़े विवादों पर रोशनी डाली है।[1] हिन्दी-उर्दू के अलगाव के पीछे जो दो मुख्य वजहें उनके मुताबिक हैं, उनमें से एक तो फोर्ट विलियम कॉलेज के जॉन गिलक्राइस्ट (1759-1841) का हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा मानना और इनके अध्यापन

चित्र-1: फोर्ट विलियम कॉलेज, 1800, कलकत्ता/चित्र साभार: ए.वी.ए. ब्रायन ट्रस्ट

और लेखन के लिए अलग-अलग तरीकों का प्रस्ताव रखना। यह एक संस्थागत कदम होने के कारण इस विषय को सार्वजनिक मंच पर ले आया। यहीं से दो भाषा के सिद्धान्त की रेखा खींचने की कोशिश शुरू हुई और 'हिन्दुस्तानी' के दो रूपों – हिन्दी और उर्दू – की नींव पड़ी। और दूसरा, ईसाई मिशनरियों द्वारा अठारहवीं सदी के अन्त में छापेखाने और बुक सोसाइटियों के खोले जाने और अक्षरों के टाइप तैयार करने, जिसने हिन्दी के मानकीकृत रूप, व्याकरण, शब्दावली आदि को बनाने पर ज़ोर डालते हुए, हिन्दुओं की हिन्दुस्तानी और मुस्लिमों की हिन्दुस्तानी का अलग-अलग ढंग से विकास करना शुरू किया।

पहला टकराव

हिन्दी के विकास के अगले चरण में एक विवाद उठा जिनमें जिन दो लोगों के नाम उल्लेखनीय हैं, वे हैं – राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' (1823-1895) और राजा लक्ष्मण सिंह (1826-1896)। शिवप्रसाद सिंह ने हिन्दी और उर्दू को पास लाने की कोशिश करते हुए, हिन्दी में उर्दू शब्दों की हिमायत की और इसके उलट लक्ष्मण सिंह का झुकाव तत्समयुक्त हिन्दी की ओर था। कैलाश चन्द्र भाटिया ने अपनी किताब *हिन्दी भाषाः विकास और स्वरूप* में लिखा है, "उनके (शिवप्रसाद सिंह) प्रयास से पण्डिताऊपन से तो भाषा मुक्त हुई, पर वर्तनी में एकरूपता स्थापित न हो सकी।[2] उनकी शैली का बहुत विरोध हुआ, विशेषतः *इतिहास तिमिरनाशक* पुस्तक की भाषा को लेकर; क्योंकि प्रकारान्तर से वह उर्दू ही मानी गई (बगावत का शुबहा हुआ, पूछने पर उकूबत और सियासत के डर से झूठा इकरार कर दिया)।" आगे वे लिखते हैं, "...राजा लक्ष्मण सिंह दूसरी ओर विशुद्ध हिन्दी के पक्षधर थे। उर्दू को मुसलमानों की भाषा मानते थे।..." कुल मिलाकर, दोनों ही खुद तो भाषा को कोई परिनिष्ठित रूप न दे सके, लेकिन साहित्य के संसार में भाषा के सवाल को जीवन्त कर दिया। और इसी की झलक आगे चलकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य द्वारा हमें देखने को मिलती है।

भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में आलोचकों द्वारा किसी विशिष्ट कालखण्ड में साहित्य का प्रतिनिधित्व करने वाले रचनाकारों के नाम पर साहित्यिक आन्दोलनों के नामकरण करने का चलन रहा है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) उन चुनिन्दा रचनाकारों में पहले हैं, जिनके नाम पर हिन्दी साहित्य आन्दोलन का नामकरण किया गया, जिसे हम 'भारतेन्दु युग' के नाम से जानते हैं। यहीं से हिन्दी गद्य और कविता की

चित्र-2: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। ऐसे पहले लेखक, जिनके नाम पर हिन्दी के साहित्यिक आन्दोलन का नामकरण किया गया - 'भारतेन्दु युग'।

दृष्टि से नई धारा की शुरुआत हुई। भारतेन्दु को हिन्दी की ज़्यादातर गद्य विधाओं का प्रवर्तक माना जाता है। हिन्दी साहित्य को नई शिक्षा के प्रभाव से; देशहित और समाजहित से; दुनियाभर के नए विषयों से जोड़ने का महत्वपूर्ण काम इसी युग में शुरू हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (1884-1941) का एक उद्धरण देखिए, "जब भारतेन्दु अपनी मँजी हुई परिष्कृत भाषा सामने लाए तब हिन्दी बोलने वाली जनता को गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रकृत साहित्यिक रूप मिल गया और भाषा के स्वरूप का प्रश्न न रह गया। प्रस्तावकाल समाप्त हुआ और भाषा का स्वरूप स्थिर हुआ।"[3] इससे साफ है कि अब साहित्य के क्षेत्र में हिन्दी का आगमन हो चुका था। इस हिन्दी में न राजा लक्ष्मण सिंह का विशुद्ध पण्डिताऊपन था और न ही सितारे हिन्द का उर्दूनुमा आग्रह बल्कि यह बीच का रास्ता था। भारतेन्दु मण्डल (भारतेन्दु युग के कुछ प्रमुख रचनाकारों का समूह) ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में हिन्दी में रचनाएँ लिखनी शुरू कीं। निबन्ध, नाटक, समालोचना आदि गद्य में प्रमुख रूप से लिखे गए। बड़े पैमाने पर बांग्ला और अँग्रेज़ी भाषाओं से अनुवाद का काम हुआ। और 'नए चाल की हिन्दी' कहकर कविता की भाषा में खड़ी बोली का आह्वान भी भारतेन्दु ने जाते-जाते कर दिया।

द्विवेदी युग और आधुनिक हिन्दी

जिस हिन्दी को भारतेन्दु युग ने स्थापित किया, उसी को आगे चलकर सुव्यवस्थित करने का काम द्विवेदी युग में हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (1864-1938) इस युग के प्रवर्तक माने जाते हैं। इन्होंने हिन्दी की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका *सरस्वती* का लगभग 18 वर्षों (1903-1921) तक सम्पादन किया। वे एक कुशल सम्पादक थे। बांग्ला, मराठी, संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि साहित्य के ज्ञाता थे। इन्होंने खुद तो साहित्य रचा ही लेकिन साथ-ही-साथ अपने समय के रचनाकारों को तराशने और हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण काम भी किया। उस युग का बिरले ही कोई प्रतिभाशाली लेखक होगा, जिसकी

रचना सरस्वती में प्रकाशित न हुई हो। प्रेमचन्द (1880-1936), मैथिलीशरण गुप्त (1886-1964), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि इस युग के प्रमुख लेखक हैं। द्विवेदीजी के बारे में कई किस्से प्रसिद्ध हैं, वे व्याकरण के नियमों का कड़ाई-से पालन करते थे और अगर कोई लेखक इन नियमों का पालन न करता तो उसकी भेजी पाण्डुलिपि में सुधार कर वापस भेज देते थे। यह वह समय था जब हिन्दी भाषा और शैली का मानकीकरण किया जा रहा था। सबसे खास बात जो द्विवेदीजी के व्यक्तित्व में थी, उसकी ओर इशारा करते हुए हिन्दी के मार्क्सवादी आलोचक मैनेजर पाण्डेय (1941-) ने अपनी किताब *शब्द और साधना* में लिखा है, "द्विवेदीजी की साहित्य की धारणा अत्यन्त व्यापक थी। वे केवल कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और आलोचना को ही साहित्य नहीं मानते थे। उनके अनुसार किसी भाषा में मौजूद सम्पूर्ण ज्ञानराशि साहित्य है। साहित्य का यही अर्थ वांङ्मय शब्द से व्यक्त होता है। अपनी इसी धारणा को ध्यान में रख उन्होंने कविता, कहानी और आलोचना के साथ अर्थशास्त्र, भाषाशास्त्र, इतिहास, पुरातत्व, जीवनी, दर्शन, समाजशास्त्र, विज्ञान आदि के ग्रन्थों और निबन्धों का लेखन किया।"[4]

भाषा एक ऐसी संरचना है जो कइयों के लिए मुक्ति का द्वार खोलने

SARASVATI—Reg. No. A248

सरस्वती

वार्षिक मूल्य ५) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

चित्र-3: *महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में छपने वाली साहित्यिक पत्रिका 'सरस्वती' के दिसम्बर 1916 में छपे अंक का आवरण पृष्ठ।*

में समर्थ होती है। इसी समर्थता से भारतेन्दु युग कई मायनों में उपेक्षित रहा। स्त्री चेतना, दलित चेतना आदि के विषय में उस समय बात तो शुरू हुई लेकिन दबे स्वर में। ज्ञात रहे कि भारतेन्दु युग के समकक्ष ही राजा राम मोहन राय, आर्य समाज आदि कई आन्दोलन बंगाल की धरती पर चल रहे थे और ऐसा मान लेना बड़ा मुश्किल है कि भारतेन्दु जैसे सजग लेखक उनसे अनभिज्ञ रहे हों। उस पर भी भारतेन्दु पर बंगाल के नवजागरण का गहरा प्रभाव था, वहाँ

के साहित्य पर भी उनकी नज़र लगातार बनी हुई थी। फिर भी इन मुद्दों को साहित्य में जगह न मिलना, कई सवालिया-निशाँ खड़े करता है।

लेकिन द्विवेदीजी ने भाषा के इस सामर्थ्य को पहचाना। इसका उदाहरण उनके साहित्य में अनेकों जगह मिलता है। द्विवेदीजी ने सितम्बर 1914 में *सरस्वती* पत्रिका में हीरा डोम नामक कवि की कविता 'अछूत की शिकायत' प्रकाशित की। यह कविता आधुनिक हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की पहली कविता भी मानी जा सकती है। लेकिन यह हिन्दी का दुर्भाग्य ही कह लीजिए कि इस कवि की यह एकमात्र कविता उपलब्ध है। आगे लम्बे समय तक किसी ने इस कवि के बारे में कोई जानकारी इकट्ठा करने की ज़हमत नहीं उठाई। यह *सरस्वती* में छपी सम्भवतः एकमात्र भोजपुरी की कविता भी मानी जाती है। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा (1912-2000) ने 1977 में प्रकाशित अपनी किताब *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण* में जब इसका ज़िक्र किया तब जाकर हिन्दी के लोगों का ध्यान इस कविता पर पड़ा।

द्विवेदीजी जानते थे कि भाषा को व्यापक रूप देने के लिए, समाज में प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ना ज़रूरी है। वे चाहते थे कि ज़्यादा-से-ज़्यादा हिन्दी के पाठक तैयार हों। ये पाठक केवल विद्वज्जन न होकर समाज के आम जन भी हों। उन्होंने भाषा को जागरण का माध्यम बनाने और फिर जागरण के माध्यम से भाषा की उन्नति का बीजारोपण किया। वे स्त्री-पुरुष समानता के शुरुआती प्रबल समर्थकों में से हैं। इस विषय पर उन्होंने अनेकों लेख लिखे और हिन्दी के पाठकों को जगाने की कोशिश की। इनमें 'गुजरातियों में स्त्री-शिक्षा', 'जापान की स्त्रियाँ', 'जापान में स्त्री-शिक्षा', 'स्त्रियाँ और संगीत', 'स्त्रियों का सामाजिक जीवन', 'एक तरुणी का नीलाम' (महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली-7 में संकलित) आदि प्रमुख हैं।[5]

छायावाद और हिन्दी

भाषा और साहित्य, दोनों की खासियत है कि ये केवल एक जगह ठहर नहीं जाते, बल्कि अनवरत चलायमान रहते हैं। ये अपने समय के समाज से प्रभावित रहते हैं और अपने समय को कई मायनों में प्रभावित करने की क्षमता भी रखते हैं। हिन्दी का छायावादी आन्दोलन भाषा और भावों के विभिन्न स्तरों पर नवीनता का पुट लेकर प्रस्तुत होता है। इस युग में शब्दों में नए अर्थों को भरने और नई शैलियों को विकसित करने का महत्वपूर्ण काम हुआ। अब भाषा अभिधा से व्यंजना की ओर बढ़ चुकी थी। इसी की ओर ध्यान दिलाते हुए नामवर सिंह (1926-2019) ने अपनी

किताब *छायावाद* में लिखा है, "हर चीज़ के प्रति अथक जिज्ञासा और कुतूहल छायावाद का मंगलाचरण है, और यही वह रचनात्मक शक्ति है जिसके द्वारा कवि, दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र में कोई नई चीज़ दे जाता है। छायावाद में इस नई शक्ति का उन्मेष था, इसलिए उसने हिन्दी साहित्य को कुछ नया दिया। द्विवेदी युग में अथवा रीतिकाल में इसकी कमी थी इसलिए इन युगों की रचनात्मक देन बहुत कम है।"[6] इस युग के प्रतिनिधि रचनाकारों में सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1899-1961), जयशंकर प्रसाद (1889-1937), सुमित्रानन्दन पंत (1900-1977) और महादेवी वर्मा (1907-1987) शामिल हैं।

चित्र-4: *छायावाद के प्रतिनिधि रचनाकार माने जाने वाले प्रमुख कवि – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।*

आज हिन्दी में लोग धड़ल्ले-से मुक्त छन्द की कविताएँ लिखते हैं। उस समय यह करना इतना आसान नहीं था। यह काम किया निराला ने। उनकी कविता है, 'जूही की कली' (1916) जो सम्भवतः हिन्दी में मुक्त छन्द की पहली कविता मानी जाती है। इस रचना को द्विवेदीजी ने शुद्धतावादी आग्रह के चलते *सरस्वती* के लिए स्वीकार न करते हुए वापस लौटा दिया था। आखिरकार एक-न-एक दिन सम्पादक भी पुराने हो जाते हैं और भाषा और साहित्य में नए प्रतिमानों का प्रवेश हो जाता है। इसी प्रवेश को द्विवेदीजी जैसे कुशल सम्पादक भी अपनाने में असमर्थ रहे।

खैर, इस काल में प्रकृति पर अभूतपूर्व रचनाएँ लिखी गईं। आचार्य शुक्ल ने एक जगह लिखा है, "यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा; सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा।"[7] प्रकृति पर तो इन कवियों ने लिखा ही लेकिन साथ-ही-साथ स्वतंत्रता आन्दोलन, नारी मुक्ति, दलित मुक्ति और किसान-मजूरों की अभिव्यक्ति भी इनके साहित्य में मिलती है। इसकी वजह उस समय देश-दुनिया में चल रही घटनाएँ भी थीं और इन रचनाकारों की संवेदनशीलता भी।

रूसी क्रान्ति के बाद प्रगतिशील साहित्य के प्रसार से हिन्दी के लेखक भी प्रभावित रहे। इसकी झलक छायावादियों के समकालीन रहे कथाकार प्रेमचन्द में भी मिलती है। उन्होंने भी द्विवेदीयुगीन आदर्शवादिता से शुरुआत कर आदर्शोन्मुख यथार्थवाद तक का सफर तय किया जिसकी परिणति उनकी आखिरी रचनाओं, यानी 'कफन' (1936) या 'गोदान' (1936) आदि के रूप में दिखाई देती है। गौरतलब यह है कि छायावाद के प्रतिनिधि रचनाकारों ने ही इस युग के अन्त की घोषणा भी की। पंत का 'युगान्त' (1936) काव्य-संग्रह, निराला की कविताएँ 'भिक्षुक' (1923), 'वह तोड़ती पत्थर' (1935), 'कुकुरमुत्ता' (1941), प्रसाद का उपन्यास 'कंकाल' (1930) या महादेवी वर्मा कृत 'स्मृति की रेखाएँ' (1943), 'अतीत के चलचित्र' (1941) या 'शृंखला की कड़ियाँ' (1942) आदि इसका प्रमाण हैं।

प्रगतिवाद के कदम

प्रयोगवाद, प्रगतिवाद या नई कविता भले ही बाद के साहित्यिक आन्दोलन हों लेकिन इसकी पृष्ठभूमि छायावाद ही है। इन तीनों साहित्यिक आन्दोलनों की प्रवृत्तियाँ छायावादी कवियों, खास तौर पर निराला के साहित्य में देखने को मिलती हैं। प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य का वह आन्दोलन था, जिसने आम जनता और उसके सौन्दर्यबोध को साहित्य के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। इसी वजह से इसकी भाषा आम जनता की भाषा थी। यह पीड़ित, शोषित, किसान-मजूरों की आवाज़ को बुलन्दी से उठाने वाला आन्दोलन था। इसके स्तम्भ माने जाने वाले रचनाकारों में नागार्जुन (1911-1998), केदारनाथ अग्रवाल (1911-2000), त्रिलोचन शास्त्री (1917-2007) आदि हैं। इन तीनों ही कवियों ने व्यवस्था से दो टूक लोहा लिया। एक और विशेषता इन कवियों की प्रकृति पर लिखी यथार्थवादी कविताएँ हैं। साहित्य में प्रकृति पर लिखने की परम्परा पुरानी रही है लेकिन इन तीनों कवियों ने प्रकृति पर अलग ढंग से लिखा। इन्होंने साधारण लोगों और परिस्थितियों से नाता जोड़ते हुए, प्रकृति पर अप्रतिम यथार्थवादी कविताओं का सृजन किया। मानवीकरण का इस्तेमाल इन कवियों ने खूब किया। नागार्जुन की कविता 'तीन दिन तीन रात' शहर में कर्फ्यू लगने पर पेड़ों का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करती है,

'बस सर्विस बन्द थी
तीन दिन, तीन रात
गुम रही, गतिहीन सड़कें
तीन दिन, तीन रात
पंक्तिबद्ध वृक्षों के
दिल भला क्यों नहीं धड़के
तीन दिन, तीन रात।'

इस आन्दोलन पर आगे चलकर आरोप लगा कि यह साहित्य को केवल कम्युनिस्ट पार्टी के प्रोपेगेंडा तक सीमित कर रहा है। और कविताओं की जगह ऐसा जान पड़ता है कि पार्टी के लिए नारे लिखे जा रहे हैं। इसमें कितनी सच्चाई है, यह फैसला पाठक खुद साहित्य पढ़कर कर सकते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की कविता 'बच्चे के जन्म पर', इसके उदाहरण के लिए अक्सर उद्धृत की जाती है,

'हाथी-सा बलवान, जहाज़ी हाथों वाला और हुआ
सूरज-सा इन्सान, तरेरी आँखों वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ,
माता रही विचार अँधेरा हरने वाला और हुआ
दादा रहे निहार सवेरा करने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ,
जनता रही पुकार सलामत लाने वाला और हुआ
सुन ले री सरकार! कयामत ढाने वाला और हुआ
एक हथौड़े वाला घर में और हुआ।'

ऐसी कई अन्य कविताएँ भी आपको जहाँ-तहाँ इन कवियों के साहित्य में मिल जाएँगी। फिर भी आज़ादी के पहले और बाद में भी इन कवियों ने अपनी प्रतिबद्धता जनता के प्रति जारी रखी। नागार्जुन को लोग 'बाबा' नागार्जुन नाम से पुकारते थे। इसके पीछे की वजह थी कि इन्होंने बच्चों के लिए भी कविताएँ लिखीं। हिन्दी के कम ही मुख्य धारा के लेखक हैं, जिन्होंने बाल-साहित्य की रचना के लिए कलम उठाई। बहरहाल, इस युग में भाषा और शिल्प के स्तर पर एक ठहराव तो दिखाई देने ही लगा था। और इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्म होता है हिन्दी के नए आन्दोलन 'प्रयोगवाद' का। इसी आन्दोलन ने प्रगतिवादियों का सबसे अधिक विरोध किया। और प्रगतिवादियों का भी आरोप रहा कि प्रयोगवादी आन्दोलन अमरीकापरस्त है।

प्रयोगवाद और नई कविता

खैर, प्रयोगवाद की शुरुआत पत्रिका *तार सप्तक* से मानी जाती है। इस पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद; इलियट के निर्वैयक्तिकता के सिद्धान्त; अमरीकी नई समीक्षा आन्दोलन और द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव था। प्रयोगवाद व्यक्तिवाद का समर्थक था। ये पिछले प्राप्त ज्ञान के मुकाबले अपने रास्तों का अन्वेषी खुद बना। इनका मानना था कि भाषा और शैली – यानी रूप में आधारभूत परिवर्तन करने पर ही साहित्य को नई पहचान मिल सकती है। अज्ञेय (1911-1987) की कविता 'नए कवि से' की ये पंक्तियाँ देखिए,

'तेरा कहना ठीकः जिधर मैं चला
नहीं वह पथ था

मेरा आग्रह भी नहीं रहा मैं चलूँ उसी पर
सदा जिसे पथ कहा गया, जो
इतने-इतने पैरों द्वारा रौंदा जाता रहा कि उस पर
कोई छाप नहीं पहचानी जा सकती थी।'

प्रयोगवादी भाषा और शिल्प को बहुत महत्व देते थे, इसलिए ही नए कथ्य के लिए नई भाषा और शिल्प के हिमायती थे। उनका मानना था कि संवेदना की अनुभूति से ज़्यादा ज़रूरी सटीक अभिव्यक्ति की कला है। कवि और अकवि का यही अन्तर उनकी नज़र में था। नए प्रतीकों, बिम्बों, उपमानों की रचना इस दौरान हुई जिसने भाषा को समृद्ध किया। अज्ञेय की प्रसिद्ध कविता 'कलगी बाजरे की' का एक अंश देखिए,

'अगर मैं तुम को ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार – न्हायी कुँई,
टटकी कली चम्पे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही: ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

तार सप्तक के कवियों की दो धाराएँ आगे चलकर बनीं। एक व्यक्तिवादी धारा और दूसरी समाजवादी (मार्क्सवादी) धारा। एक के प्रतिनिधि अज्ञेय बने और दूसरी के गजानन माधव 'मुक्तिबोध' (1917-1964)। एक तरफ जहाँ अज्ञेय व्यक्ति से समाज की बात कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ मुक्तिबोध समाज से व्यक्ति की। यहीं से 'नई कविता' आन्दोलन की शुरुआत भी माननी चाहिए। नई कविता के मुख्य रचनाकारों में शमशेर बहादुर सिंह (1911-1993), रघुवीर सहाय (1929-1990), श्रीकान्त वर्मा (1931-1986), मुक्तिबोध आदि प्रमुख हैं। यह आज़ादी के बाद का समय था। इसलिए ही इस धारा के कवियों ने अपने समय के विरोधाभास, द्वन्द्व

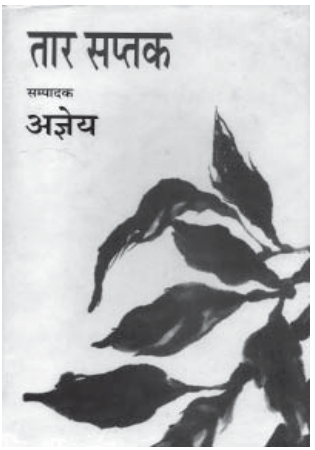

चित्र-5: *अज्ञेय के सम्पादन में निकलने वाली पत्रिका 'तार सप्तक' का आवरण पृष्ठ।*

आदि को पहचाना और अभिव्यक्ति की खोज की। मुक्तिबोध ने लम्बी कविताएँ लिखीं, जो थी तो गद्य प्रधान लेकिन इसकी लयात्मकता (नई कविता के कवियों ने भाषा में 'शब्द की लय' की बजाय 'अर्थ की लय' को ज़रूरी माना) ही नई कविता की खासियत थी। इन्होंने मनोविश्लेषणवाद को आधार बनाया और समाजशास्त्र से इसे जोड़ने का महत्वपूर्ण काम किया। और अपनी कविताओं में सामाजिक विडम्बनाओं का चित्रण तो किया ही लेकिन साथ ही, रचना-प्रक्रिया पर भी विशेष बल दिया। यानी रचना करते हुए, रचनाकार जिस पीड़ा से गुज़रता है। मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' इसका एक उदाहरण है। वे बेहतर दुनिया बनाने की तमन्ना रखने वाले और उसके लिए अभिव्यक्ति के खतरे उठाने वाले रचनाकारों में से थे। 'मैं तुम लोगों से दूर हूँ' कविता की लाइनें देखिए,

'इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए
वह मेहतर मैं हो नहीं पाता
पर, रोज़ कोई भीतर चिल्लाता है
कि कोई काम बुरा नहीं
बशर्ते कि आदमी खरा हो।'

'नई कविता' आन्दोलन के बाद हिन्दी में कोई बड़ा साहित्यिक आन्दोलन देखने को नहीं मिलता बल्कि 1960 के बाद के साहित्य को समकालीन साहित्य कहा जाता है। इसकी कई प्रवृत्तियाँ ज़रूर दिखाई देती हैं। जैसे, अकविता, जनवादी कविता, नवगीत आन्दोलन, आज की कविता, युयुत्सुवादी कविता आदि। आज़ादी के बाद का यह साहित्य खास तौर से व्यवस्था के प्रति मोहभंग; आपातकाल; नक्सलबाड़ी आन्दोलन; नब्बे के दशक के बाद आई उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीतियों; उत्तर-आधुनिकता के नतीजे में उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति; साम्प्रदायिकता आदि विषयों को खुद में समेटे हुए है।

अभिषेक दुबे: फिलहाल *एकलव्य* प्रकाशन की शिक्षा साहित्य टीम के सम्पादकीय समूह में भागीदार। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए.। साहित्य, भाषा और कला में विशेष रुचि। हिन्दी, भोजपुरी, अँग्रेज़ी और गुजराती भाषाओं में लेखन और अनुवाद।

सन्दर्भः

1. Rai, Alok: Hindi Nationalism, 2001, Orient BlackSwan
2. Bhatia, Kailash Chandra: Hindi Bhasha: Vikas Aur Swaroop, 2018, Prabhat Prakashan
3. Shukla, Ramchandra: Hindi Sahitya Ka Itihas, 2011, Vani Prakashan
4. Pandey, Manager: Shabd aur Sadhna, 2019, Vani Prakashan
5. Yayavar, Bharat: Mahaveer Prasad Dwivedi Rachnavali, Kitab Ghar Prakashan
6. Singh, Namvar: Chhayavad, 2018, Rajkamal Prakashan
7. Shukla, Ramchandra: Ras Mimans